मुनित्रय की लक्ष्यगामिता

डॉ. सोमलेखा

टी.वी.एस. वाली गली, उत्तम नगर, दिल्ली रोड़, रेवाड़ी ।

मनुष्य के समक्ष भाषा के विकास का प्रश्न एक अनुत्तरित प्रश्न है । भाषा का विकास चाहे किसी भी रीति से अथवा किसी भी स्रोत से हुआ हो, यह निर्विवाद सत्य है कि संसार की सभी भाषाओं का मूलस्रोत संस्कृत भाषा ही है । प्रकृतिप्रत्यय विभाग रूप संस्कार से संकलित होने के कारण इस भाषा को संस्कृत कहा जाता है। शब्द का बोध व्याकरण के बिना संभव नहीं है। शब्द के ज्ञान और अपशब्द के परिहार का सर्वोत्कृष्ट उपाय व्याकरण ही है। किसी भाषा की रीढ़ उसका व्याकरण ही होता है। संस्कृत के मनीषीयों ने व्याकरण को भाषा रूपी देह का मुख्य बताया है - मुखं व्याकरणं स्मृतम्।

प्रकृति प्रत्यय की कल्पना के साथ ही व्याकरण का उदय हुआ । यद्यपि शब्दशास्त्र के अनेक आचार्य हुए हैं, तथापि महर्षि पाणिनि एक तत्त्ववेत्ता शब्दमनीषी हुए हैं । संस्कृत भाषा का व्याकरण विश्व की अन्य भाषाओं के व्याकरण के अपेक्षा अत्यधिक श्रेष्ठ, सर्वाङ्गपूर्ण और वैज्ञानिक आधारशिला पर अवस्थित है।

पाणिनि

पाणिनि व्याकरण सम्प्रदाय का एक सुपरिचित एवं सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त नाम है। यद्यपि उनके जन्मकाल तथा जन्मस्थान के विषय में बड़ा विवाद है, तदपि व्याकरणशास्त्र के अध्येता को आचार्य पाणिनि के औपचारिक परिचय की किञ्चिन्मात्र भी आवश्यकता नहीं है । उनका कार्य ही उनका परिचय है ।

साधुशब्दों के अनुशासन के रूप में पाणिनि ने जिस अप्रतिम तथा लोकोत्तर व्याकरण का प्रणयन किया, वह आठ अध्यायों में विभक्त होने के कारण व्याकरण जगत् में अष्टाध्यायी आख्या को प्राप्त है । अष्टाध्यायी सूत्रशैली का चूडान्त निदर्शन है । इसमें 32 पादों में लगभग 3985 सूत्र ग्रथित हैं ।[1] निःसंदेह महर्षि पाणिनि ने अपने पूर्ववर्त्ती वैयाकरणों के गंभीर अनुसंधान का लाभ मिला है। फलतः वे सर्वांगपूर्ण और श्रेष्ठ व्याकरण के प्रणयन में सफल हो सकें आज सम्पूर्ण विश्व पाणिनि की प्रज्ञा की मुक्तकण्ठेन प्रंशसा कर रहा है। पाणिनि की अमर रचना 'अष्टाधायी' अपने अलौकिक गुणों के द्वारा व्याकरण निकाय में सर्वाधिक लोकप्रिय और समादृत ग्रन्थ है। यह संस्कृत के अध्येताओं के लिए गौरव की बात है कि अष्टाध्यायी व्याकरण निकाय में एक सर्वश्रेष्ठ, प्राचीन और वैज्ञानिक व्याकरणशास्त्र है । वस्तुतः यह समृद्ध व्याकरणिक परम्परा का चरमबिन्दु है । पाणिनि ने इसकी रचना में निम्नलिखित प्रमुख उपागमों का आश्रयण किया है - सूत्र (प्रमुखतः), सञ्ज्ञा, प्रत्याहार, अधिकार, अनुवृत्ति, गणपाठ, धातुपाठ असिद्धभाव तथा निपातन आदि । पाणिनि की अलब्धगाध गाम्भीर्य संवलित बुद्धि का सहज अनुमान नहीं लगाया जा सकता, जिसने 132 अक्षरों को केवल डेढ मात्रा वाले 'अच्' (अ=1, च्=½ अर्थात् 1+ ½ = 1½) प्रत्याहार में निबद्ध कर दिया ।[2]

अनेकों पूर्वापर वृत्तियों के कारण जितना सम्मान अष्टाध्यायी को प्राप्त है, उतना अन्य किसी व्याकरण ग्रन्थ को नहीं है । अष्टाध्यायी के विषय का अनुशीलन करने से उसकी रचना पद्धति की वैज्ञानिकता सुतराम् स्पष्ट हो जाती है । आचार्य पाणिनि ने जिस सूक्ष्मेक्षिका के द्वारा अथाह शब्द सागर का अवगाहन करते हुए संस्कृतभाषा का अन्वाख्यान

[1] द्र0- अष्टाध्यायी (चन्द्रलेखा-हिन्दी व्याख्या) - पं. ईश्वरचन्द्र, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, भूमिका, पृ. 7 ।

[2] यहाँ उल्लेखनीय है कि 'अच्' के द्वारा अ के 18 भेद, इ के 18 भेद, उ के 18 भेद, ऋ के 18 भेद, लृ-ए-ऐ-ओ-औ प्रत्येक 12-12 भेद, कुल 132 भेदों का ग्रहण होता है।

किया है, वह उनके अनल्पमति होने में पर्याप्त उपोद्वलक है । अष्टाध्यायी में लघुता व व्यापकता का स्वर्ण सौरभ संयोग प्राप्त होता है ।

पाणिनि ने संस्कृत भाषा का न केवल विश्लेषण किया है, अपितु इसे सूत्रश्रृंखला में आबद्ध करके स्थिरता प्रदान की है । भाषा एक सतत प्रवहमान और विकासशाल तत्त्व है । आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों का मत है कि भाषा भौतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों से प्रभावित होती है । फलतः इसमें विकास होता रहता है, परन्तु पाणिनीय व्याकरण में बद्ध संस्कृतभाषा न तो रूप परिवर्त्तन कर सकी और न ही तथाकथित विकास कर सकी ।

कात्यायन

पाणिनि ने सभी विधाओं की शब्दावली का संग्रह करके और उसे वर्गीकृत करके उस समय की प्रचलित भाषा को व्याकरण निकष पर कसा था। यह सर्वविदित तथ्य है कि जगत् की तरह भाषा भी परिवर्तनशील है। अतः यह स्वाभाविक है कि कालान्तर में कुछ नवीन शब्द भाषा में आ जाते हैं। इस न्यूनता को दूर करने के लिए आचार्यों ने वार्त्तिकों की रचना की। वार्त्तिक के लक्षण के अनुसार उक्त,अनुक्त, दुरुक्त की चिन्तना को वार्त्तिक कहा जाता है। द्र.

उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्त्तते।

तं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहुर् वार्त्तिकज्ञा मनीषिणः।।

अर्थात् जहाँ उक्त (= सूत्र में कथित विषय), अनुक्त (= जो विषय सूत्र में छूट गया है) तथा दुरुक्त (= जो प्रमादवश अथवा अन्य किसी कारण से दुष्ट है)- इन तीनों के विषय में चिन्तन होता है, उसे 'वार्त्तिक' कहते हैं।

वार्त्तिककारों में वार्त्तिककार कात्यायन का नाम प्रमुख है । एक मान्यता के अनुसार कात्यायन पाणिनि के सहपाठी थे । वार्त्तिकपाठ स्वतन्त्ररूपेण प्राप्त नहीं होता है । महाभाष्य में लगभग 5000 वार्त्तिक प्राप्त होते हैं । अधिकांश वार्त्तिक कात्यायन के हैं । महाभाष्य में अन्य आचार्यों के वार्त्तिक भी प्राप्त होते हैं जिनकी संख्या सौ से अधिक नहीं । काशिका में कुछ प्राचीन आचार्यों के वार्त्तिक भी प्राप्त होते हैं ।[3] एक मान्यता के अनुसार कात्यायन पाणिनि से ईर्ष्याभाव रखते थे तथा वे पाणिनि के कटु आलोचक थे । फलतः उन्होंने 5000 वार्त्तिकों की रचना की । वस्तुतः पाँच हजार वार्त्तिकों की रचना का यह अर्थ कथमपि नहीं लगाया जा सकता कि सूत्र-रचना में पाणिनि से कोई बड़ी भारी भूल हो गई हैं ।

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक से पी.एच.डी. उपाधि हेतु 'काशिकास्थ वार्त्तिकों का एक समीक्षात्मक अध्ययन' नामक शीर्षक पर शोध कार्य करते हुए मैंने पाया कि कात्यायन के अधिकांश वार्त्तिकों में उक्त चिन्ता ही उपलब्ध होती है तथा अनुक्त चिन्ताविषयक वार्त्तिकों की संख्या 50 से अधिक नहीं है जिनमें तात्कालिक शिष्ट प्रयोगों के विषय में विचार किया गया है । अथ च, अपने शोधकार्य के आधार पर यह विश्वासपूर्वक कह सकती हूं कि दुरुक्त चिन्ता का एक भी उदाहरण मुझे प्राप्त नहीं हुआ ।

वास्तविकता यह है कि आचार्य कात्यायन ने अपने वार्त्तिकों के द्वारा पाणिनीय व्याकरण को न केवल पूर्णता प्रदान की है, अपितु अनेकत्र भाषा विज्ञान के गुप्त आशयों को प्रकट किया है । यहां समालोचक भट्ट कुमारिल का निम्न कथन भी अवलोकनीय है -

सूत्रेष्वेव हि तत्सर्वम्।

यद्वृत्तौ यच्च वार्त्तिके ।।

[3] द्र0 - काशिकावृत्ति (हिन्दी व्याख्या)-पं0 ईश्वर चन्द्र, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, भूमिका, पृ. 16 ।

परन्तु तत्त्वाभिनिवेशी आलोचक की दृष्टि से यह कथन उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है । सम्भवतः भट्ट कुमारिल का ही अनुसरण करते हुए काशिकावृत्ति के न्यास टीकाकार ने सभी वार्त्तिकों को सूत्रों में ही गतार्थ बताया है । इस परम्परा में आधुनिक विद्वानों में वाराणसी से पं. रघुनाथ शर्मा तथा हिमाचल प्रदेश से पं. हरिनारायण तिवारी का नाम विशेष उल्लेखनीय है । पूर्वोक्त दोनों विद्वानों ने विश्वासपूर्वक सभी वार्त्तिकों की सूत्रों में ही मतार्थता सिद्ध करते हुए उनको अनर्थक कहा है । तिवारी जी का यह ग्रन्थ चौखम्बा ओरियण्टालिया, नई दिल्ली से मुद्रणाधीन है, परन्तु यह दुःख का विषय है कि इस प्रकार एक महान् शब्दयोगी के भागीरथ योगदान को नकारा गया है।

वस्तुतः कात्यायन छिद्रान्वेषी आचार्य नहीं थे । उन्होंनें अपने वार्त्तिकों के द्वारा पाणिनीय शास्त्र की मर्यादा का क्वचिदपि अतिक्रमण नहीं किया है, प्रत्युत इसमें श्रीवृद्धि की है । वार्त्तिककार कात्यायन आचार्य पाणिनि के प्रति बद्धादर हैं । पाणिनीय व्याकरण के विकास में कात्यायन का महत्त्वपूर्ण योगदान है । अतः उन्हें पाणिनि के आलोचक के रूप में प्रस्तुत करना दुर्भाग्यपूर्ण है ।

पतञ्जलि

पाणिनि के कतिपय शताब्दी पश्चात् व्याकरणशास्त्र के यशस्वी मुनि महर्षि पतञ्जलि का आविर्भाव हुआ । महर्षि पतञ्जलि ने अष्टाध्यायी पर 'महाभाष्य' नामक आलोचनापरक ग्रन्थ की रचना की । महाभाष्य में आठ अध्याय और 85 आह्निक हैं । सब न्यायबीजों का निबन्धनभूत यह ग्रन्थ अपनी विशिष्ट व्याख्यान शैली और विशालता के कारण व्याकरण निकाय में महाभाष्य नाम्ना प्रसिद्ध है । पतञ्जलि ने महाभाष्य में न केवल शब्दसिद्धि का मार्ग बताया है, अपितु व्याकरण शास्त्र विषयक गूढ सिद्धान्तों की समीचीन व्याख्या भी की है ।

महर्षि पतञ्जलि ने शताधिक सूत्रों का तथा इससे कहीं अधिक सूत्रैकदेशों का प्रत्याख्यान कर दिया है । प्रत्याख्यान के अवसर पर अनेकत्र ऐसा प्रतीत होता है कि मानों उन्होंने सूत्रप्रत्याख्यान के लिए कमर कस ली है । इसके लिए अपादान प्रकरण का भाष्य विशेषतः अवलोकनीय है । अपादान प्रकरण में पतञ्जलि ने एक प्रकार से कहर बरपा दिया है । वे बुद्धिकल्पिताऽपाय का अस्त्र लेकर धड़ाधड़ सूत्रों का प्रत्याख्यान करते हुए चलते हैं । उन्होंनें न केवल सूत्रों का अपितु अनेक वार्त्तिकों का भी प्रत्याख्यान कर दिया है । इतना होने पर भी न तो पाणिनि के आलोचक के रूप में और न ही कात्यायन के आलोचक के रूप में उन पर ठप्पा लग पाया है । इसके विपरीत 'यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्' जैसे उद्घोष के साथ तीनों आचार्यों में उनका मत सर्वाधिक ग्रहणीय माना जाता है । दूसरी ओर महर्षि पतञ्जलि पाणिनि की प्रशंसा के पुल बांधते हैं तथा प्रशंसा की झड़ी लगा देते हैं - 'प्रमाणभूत आचार्यो दर्भपवित्रपाणिः शुचाववकाशो प्राङ्.मुख उपविश्य महता प्रयत्नेन सूत्राणि प्रणयति स्म । तत्राऽशक्यं वर्णेनाऽप्यनर्थकेन भवितुम्' - द्र0 महाभाष्य, सूत्र 1.1.1. तथा 'सामर्थ्ययोगान्न हिं किञ्चिदत्र पश्यामि शास्त्रे यदनर्थकं स्यात्'-द्र0 महाभाष्य, सूत्र 6.1.27. एक स्थल पर वे कात्यायन को फटकारते हुए कहते हैं - 'नाऽसूया कर्त्तव्या यत्राऽनुगमः क्रियते' - द्र0 महाभाष्य, सूत्र 5.1.59.

उपसंहार

अब प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या 5000 वार्त्तिकों की रचना करने वाले आचार्य कात्यायन ने इतना भागीरथ प्रयास पाणिनि के प्रति दुर्भावनावशात् किया है? क्या अनेक सूत्रों एवं सूत्रैकदेशों का प्रत्याख्यान करने वाले महर्षि पतञ्जलि पाणिनि के प्रति आन्तरिक रागद्वेष से ग्रस्त हैं? इसका उत्तर है - नहीं, कदापि नहीं । पाणिनि और कात्यायन के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में विद्वान लोगों में जो प्रवाद प्रचलित है, वह वस्तुतः कात्यायन का घोर अपमान है। पतञ्जलि ने पाणिनीय सूत्रों के ज्ञान के लिए कात्यायन के वार्त्तिकों की अपरिहार्यता स्वीकार की है। कात्यायन ने भी अनेक स्थलों पर आचार्य पाणिनि के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया है। कात्यायन के वार्त्तिकों में जो सूक्ष्मता है, वह पाणिनीय व्याकरण को पूर्णता प्रदान करने में सर्वथा सक्षम है। वस्तुतः आचार्य पाणिनि और आचार्य कात्यायन- दोनों का उद्देश्य एक समान अर्थात् शब्दों का अनुशासन करना था। अतः इनके मध्य शत्रुता अथवा मित्रता का भाव खोजना नितांत मूर्खता है। आचार्य कात्यायन का कार्य न तो द्वेष पूर्ण है और न ही किसी पक्षपात

से ग्रस्त है। उनका दृष्टिकोण पूर्णतः वैज्ञानिक और निष्पक्ष रहा है। उनके अधिकांश वार्त्तिक पाणिनीय सूत्रों के व्याख्यान मात्र है। कालांतर में परिवर्तन भाषा में उपलब्ध हुए, उनको अनुक्त चिंता के द्वारा आचार्य ने व्याख्यात कर दिया है। इसी प्रकार यद्यपि महर्षि पतञ्जलि ने न केवल अनेक सूत्रों का प्रत्याख्यान किया है अपितु अनेक वार्त्तिकों का भी प्रत्याख्यान कर दिया है। जैसे वार्तिककार ने यलोपभाव के लिए 'यणः प्रतिषेधो वाच्यः' वार्त्तिक का निर्माण किय, भाष्यकार ने 'झलो झलि' से षष्ठ्यन्त 'झलः' पद का प्रकृत सूत्र में अनुवर्त्तन करके 'संयोगान्त झल्, का ही लोप हो' – ऐसा सूत्रार्थ कर वार्त्तिक की सूत्र में ही गतार्थता सिद्ध कर दी है। इतना होने पर भी इसमें कोई संदेह नहीं है कि पाणिनीय व्याकरण के विकास में वार्त्तिककार का महत्त्वपूर्ण योगदान है। प्रसन्न गम्भीर चिन्तन शैली में अष्टाध्यायी सूत्रों की व्याख्या करने वाले पतञ्जलि का पाणिनीय व्याकरण के विश्वतोमुखी विकास में जितना योगदान है, उक्त अनुक्त व दुरुक्त की चिन्ता करने वाले निष्पक्ष अपनी बात को प्रतिष्ठापित करने वाले वार्त्तिककार का भी कम योगदान नहीं है। मुनित्रय (पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि) के कार्यो का निष्पक्ष रूपेण अनुशीलन करने पर यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि यहां न कोई किसी का समर्थक है और न ही कोई किसी का आलोचक है । प्रत्येक आचार्य एक ही लक्ष्य के प्रति समर्पित है । तीनों आचार्य व्याकरणशास्त्र को पूर्णता प्रदान करने के लिए बद्धपरिकर हैं । वस्तुतः आलोचना-प्रत्यालोचना की अग्नि में तपकर यह शास्त्र अधिक महनीय हो गया है । कात्यायन ने पाणिनि के चिन्तन को हिमालयशिखर जैसी उच्चता प्रदान की है तथा पतञ्जलि ने महासागर जैसा गाम्भीर्य प्रदान किया है ।